आदिवासी समाज और संस्कृति

डॉ. संदीप श्रीराम पाईकराव
डॉ. ए.डी. चावडा

परिकल्पना

© सम्पादक

प्रथम संस्करण : 2018

मूल्य : 375

ISBN : 978-93-87859-85-2

शिवा नंद तिवारी द्वारा *परिकल्पना*, बी-7, सरस्वती कामप्लेक्स,
सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092 से प्रकाशित और
शेष प्रकाश शुक्ला, गाजियाबाद-201010 से टाइप सेट होकर
काम्पैक्ट प्रिंटर्स, दिल्ली-110032 में मुद्रित

आदिवासी उपन्यास साहित्य : समाज एवं संस्कृति 85
—डॉ. पठान रहीम खान

आदिवासियों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था 91
—डॉ. विमलेश

आदिवासी साहित्य 98
—प्रा. बालिका रामराव कांबळे

आदिवासी लोकजीवन : कोलाम 102
—प्रा. डॉ. सौ. मंगला श्रीराम कठारे

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में आदिवासी महिलायों का सशक्तिकरण... 106
—संगीता बारला

अद्यतन हिन्दी कथा साहित्य में आदिवासी जीवन की चुनौतियाँ 112
—डॉ. श्रीमती मनीषा शर्मा

झारखण्ड में आदिवासियों की शिक्षा 119
—रोशनी सूर्यवाला सिंह

आदिवासी विस्थापन : समकालीन हिन्दी 127
—डॉ. इन्दु पी.एस.

'बेघर सपने' : टूटते सपनों और विश्वासों के बीच एक आदिवासी... 133
—अभिनव कुमार

सांस्कृतिक अनुचिन्तन : आधुनिक हिन्दी आदिवासी कविताओं में 140
—विद्या ए.एस.

आदिवासियों की त्रासदी की सशक्त अभिव्यक्ति 'पार' 147
—डॉ. सन्तोष विजयराव येरावार

आदिवासी स्त्री जीवन के दास्तान को बयां करने वाली 152
कवियत्री—डॉ. रमणिका गुप्ता
—डॉ. ए.डी. चावडा

आदिवासियों की त्रासदी की सशक्त अभिव्यक्ति 'पार'

डॉ. सन्तोष विजयराव येरावार

'पार' उपन्यास वीरेन्द्र जैन का आदिवासी जीवन केन्द्रित एक सशक्त उपन्यास हैं। जिसमें जीरोन खेरा की आदिवासीयों के रहन सहन, सभ्यता, आचार-विचार, रीति-रिवाज, संस्कृति, लोकगीत को अभिव्यक्त किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास की कथा मध्यप्रदेश के बुन्देलखण्ड इलाके का पिछड़ा गाँव लडैई, चन्दैरी की परिवेश से जुड़ी हैं। उपन्यास में राउत आदिवासियों की कथा भी निरुपित हुई है। मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश की बुन्देलखण्ड सीमा पर स्थित बेतवा नदी के तट पर बांध बांधने के कारण डूब में आनेवाली गाँव की जमीन और प्रकृति पर निर्भर पहाड़ी जीरोन खेरा अदिवासी जनता की व्यथा प्रस्तुत उपन्यास में हैं। 'पार' उपन्यास में विस्थापन के नाम पर जेरान आदिवासियों का सरकार, प्रशासन, राजनेता, साहुकार और व्यवस्था द्वारा किस प्रकार शोषण किया जाता हैं इस वास्तविकता को भी उघाड़ हैं। जेरान आदिवासी मुख्यतः प्रकृति पर निर्भर होते हैं। प्रकृति ही उनके उदर-र्निवाह एवं आसरे का साधन हैं। वही उनकी सम्पत्ति हैं। परन्तु इस सम्पत्ति...की लुट व्यवस्था द्वारा की जा रही हैं। आदिवासीयों के घरों को विकास के नाम पर उजाड़ा जा रहा हैं। भौतिक सुख-साधनो की लालसा ने मनुष्य को पतित बना दिया है जिसकारण वह जंगलो का वहन कर रहा हैं। आदिवासीयों का आर्थिक, सामाजिक एवं पारिवारिक शोषण किया जा रहा हैं उन्हें प्रताड़ित और अपमानित किया जा रहा है इस वास्तविकता को उपन्यास में उघाड़ा गया है।

विस्थापन के द्वारा आदिवासियों की हो रही घोर प्रताड़ना उपन्यास का केन्द्र बिन्दु हैं। शहरीकरण, आधुनिकीकरण विकास और भौतिकलालसा के भेट आदिवासी चढ़ जाते है। लोगों की भौतिक आवशकता की भुख और विलासीता के कारण बढती बीजती की माँग के कारण बाँध परियोजना को बढ़ावा दिया जा रहा हैं जिसकारण आदिवासियों से उनकी विरासत को छिना जा रहा हैं। विकास के

नामपर आदिवासियों को प्रताडित, अपमानित कर उनका शोषण किया जा रहा हैं। उनकी जमीनों को छिना जा रहा है, उनके घर, रोजगार, सभ्यता, मान्यता, संवेदना को तोडा जा रहा हैं। आदिवासी विस्थापन के कारण मजदुर बननें को मजबुर हो गये हैं। उनकी सहज एवं नैसर्गिक जीवनपदधती को तहस-नहस कर होने वाला भौतिक विकास क्या श्वाश्वत हो सकता हैं? कदापी नही यह तो विकास के नाम पर पिछडे तबके को सर्वांगिण रूप से पंगु बनाया जा रहा हैं। प्रस्तुत उपन्यास में विस्थापन से बेहाल, प्रताडित, शोषित आदिवासियों की वास्तविकता को उघाड़ गया हैं।

बेतवा के किनारे बसे लडैई गाँव के पास बाँध बनाया जा रहा है। जिसकारण आदिवासियों कों उनके जंगलो से विस्थापित होना पड़ता हैं। व्यवस्था द्वारा उन्हें उचित मुआवजा भी नहि दिया जाता। प्रशासकीय अधिकार अधिकतर राशी गबन कर जाते हैं। अदिवासियों के अज्ञान और भोलपन का फायदा राजनेता, सरकारी अधिकारी, जमींदार, साहुकार और सामान्य लोगों द्वारा उठाकर उनका शोषण किया जाता हैं। और उन्हें ठगा जाता हैं। उन्हें अश्वासन दिये जाते हैं, बदलता कुछ नहीं। विस्थापित लोगों की अवस्था को प्रस्तुत उपव्यास में उघाड़ा गया हैं।

"सरकार, कहती है हम अभआरण्य बनाएँगे। लडैई का, जीरोन को वापस गुरीला पर बसाएँगे। पुराने जमाने के ढंग का रहना-सहना रखेंगे ताकि भविष्य में पर्यटक आकार देख सकें कि प्राचीन काल में यहाँ लोग किस तरह रहते थे यानी वहाँ विकास की किरण नहीं पहुँचने दी जाएगी जैसे खजुराहो में किया गया हैं। जैसा भोपाल में भारत भवन में किये जाने के प्रयास चल रहे हैं। यानी अब संस्कृति चलायमान नहीं, कहीं-कहीं विद्यमान रहेगी स्थापत्य की वस्तुओं की तरह स्थिर।"[1]

आदिवासियों का सम्पुर्ण जीवन यह जंगलो पर निर्भर होता हैं। जंगल उनके जीवन के अविभाज्य घटक होते हैं। अगर उनसे उनके जंगल हि बांध के नामपर छिन लिए जाऐंगे तो वो भुखे तो मरेंगे हि परन्तु उनका नैसर्गिक जीवन भी मुरझा जाऐगा। आदिवासी औरते और पुरुष पुरी-तरह अपना गुजर बसर जंगलो से जुड़ी चीजों द्वारा या पारंपारिक कला द्वारा करते हैं। परन्तु धीरे-धीरे वह भी भौतिक लालसा की भेट चढ़ समाप्ती के कगार पर हैं, मुखिया कहता है—"हमें गाँव वालों से किसी चीज-वसत का सहारा था क्या? तब तो हम अपनी गुजर-बसर इसी डाँग से कर लेते थे। अब दिनों दिन गाँव वालों के आसरे होते जा रहे हैं। काहे? कहाँ कि अब डांग में वह बरकत नहीं रही। तू भी तो जाता है डांग में। बता तू ही कि कितना भटकने के बाद जलावन मिलती हैं? गाद मिलती हैं। शहद मिलता हैं? जड़ी-बुटियां तो जाने कहे समाती जा रही हैं। हम भले ही हरा-भरा रुख नहीं काटते। वह देवता है हमारी निगाह में हमारा पालनहार। पर फिर भी हरे-भरे रुख

बच पाए? हम उनका कटना रोक पाए? रोक पाएँगे कभी? अब ये शहर वाले नदी पर बांध बना रहे हैं। तब प्रलय आएगी। जो अब तक बचा हैं, वह सब भी स्वाहा हो जाएगा। तब हम कहाँ जीएँगे? कैसे जिएँगे?"[2]

मानव अपनी लालसावश पर्यावरण का संहार कर रहा हैं। असंवेदनशील घर बनाने के लिए संवेदनशील आदिवासीयों को कुचला जा रहा हैं। जंगलो को तोडा जा रहा हैं, नैसर्गिक साधन-सम्पत्ति का अतिमात्रा में दोहन किया जा रहा हैं। जंगली पशु-पक्षी, जानवरों को मारा जा रहा हैं। जिसकारण अदिवासी उदरनिर्वाह के लिए अमानवीय शहरों की ओर जा रहें हैं। आदिवासीयों को यह चिंता सता रही है कि सारे जंगल समाप्त किये जाएँगे तो वे जीवत रह पायेंगे क्या? आदिवासी इसबात को समझते हैं कि हरे-भरे पेड़-पौधो को तोडने से हानी होगी लेकीन भौतिक लालसा में डुबा, स्वार्थ से घिरा शहरी व्यक्ती, सरकार एवं प्रशासकीय अधिकारी बेरहमी से नैसर्गिक साधनों का दोहन कर रहे हैं। जंगलो पर अतिक्रमन किया जा रहा हैं। जिसकारण महिलाओं को गाँव तथा शहरों की ओर जाना पड़ रहा हैं–"हाँ हमरी राउतनें जरुरी जाती हैं लडैई में, कि और-और गाँवो में। चिरौजी देने, तो कभी गाद देने, तो कभी जलावन देने, तो कभी बीजना, टुकनिया, गांजिया, पिरिया, सूप तो कभी तैंदू, अचार, करौंदे, खिन्नी, महुआ देने।"[3] आदिवासी महिलायें अपने उदर निर्वाह के लिए वनों पर आधारित होती हैं। वे अपना जंगली सामान लकड़ी, शहद, चिरोंजी देने सभी के घर जाती हैं और बदले में जीवन उपयोगी वस्तुएँ लाती हैं। इसके अलावा ठाकुर, सुनार, बामन आदि सभी छोडी-बड़ी जाति के लोगें के पास जाकर गुंदना गोदना, नाक छेदना, काम छेदना, बाँस की चीजे देना, ते इपत्ता देना आदि काम भी करती और कुछ पाती हैं। परन्तु बाँध परियोजना के कारण सारे गाँव विस्थापित हो जाने का डर और भुखे मरने का डर उन्हे निरंतर सताता हैं।

विस्थापन से मात्र आदिवासी विस्थापित नहीं होते उनके साथ सबकुछ विस्थापित हो जाता हैं। हजारा वर्षो सें उनसे जुडे नैसर्गिक संसाधन छुट जाते हैं। उनकी सभ्यता, संस्कृति समुहसदभाव, लोककलाए, लोकमान्यताएँ, लोककथाएँ सभी को व्यवस्था विस्थापित कर देती हैं। अदिवासीयों आर्थिक मुआ को बजा तो दिया जाता हैं परन्तु उनके भावनिक, मानसिक एवं सांस्कृतिक हानि की भरपाई कदापी नहीं हो सकती। सभी उनको लुटने के लिए लालायत होते हैं। व्यवस्था उनको मुख्य प्रवाह में लाने के सपने दिखाती हैं। उन्हें विकास से जोड़ने का लालच देती है और अपने स्थार्थ की रोटी सेखती हैं। आदिवासियों की उदात्त धरोवर को तोड़ने और कुचलने का कार्य व्यवस्था सदैव करती रहती है। खेर अदिवासी का

गुजर-बसर लडैई गाँव पर ही निर्भर होता है। परन्तु बाँध परियोजना के कारण गांव के बनिया ठाकुर और अन्य अनेकों लोग शहर जाते हैं। अदिवासियों पर भुखे मरने की नौबत आती हैं। आदिवासी औरतों की मजबूरी का फायदा 'घुरेसाव' उठाता हैं। उन्हें बहला-फुसलाकर उनका लैंगिक शोषण किया जाता और उन्हें नाचने के लिए एवं देहव्यापार के लिए बेचा भी जाता। आदिवासी महिलाओं को घोर प्रताड़ना और अवमानना का शिकार होना पडता। आदिवासी महिलाएँ अपने पेट के लिए मजबुर हो घुरेसाव के चक्रव्यूह में फँस जाती। घुरेसाव को यह बात पता है कि शहरों में औरतों की माँग बहुत हैं और उचित दाम भी मिल जाते हैं और आदिवासी महिलाओंको फासना भी आसान है—"औरतें ही नहीं बच्चियां भी खरीदी जाती हैं। अलबत्ता उनका प्रतिज्ञा पत्र नहीं बनता। उनका लेन-देन गुपचुप होता है। उन बच्चियों को कुछ खास गाँवों में रखा जाता हैं। वहाँ मार-पीट कर उन्हें पतुरिया के लक्षण सिखाए जाते हैं। नचनियां बनाया जाता है। फिर बाजार में बिठाया जात है।"[4] आदिवासी महिलाओं को प्रताड़ित कर उन्हें उपभोग की वस्तु मात्र बनाने में व्यवस्था कोई कसर नहिं छेडती हैं। घुरेसाव खेरे में हमेशा आता-जाता हररोज राउतनों को नयी-नयी वस्तुएँ भेट देता और उनको अपने जाल में फाँसकर शहर लेकर जाता। आदिवासी औरतों का शोषण बामन महाराज और कैलास महाराज भी करते हैं। 'अक्कल' नाम की लड़की पूजा करने मन्दिर जाती है तो वहाँ दोनो महाराज अक्कल के साथ जबरदस्ती शारिरिक सम्बन्ध रखते हैं और उसे अपने वासना का शिकार बनाते हैं। उनकी कुँवारी अवस्था में अक्कल पुत्र को जन्म देती हैं जिसकी रक्षा 'माते' करता हैं—"अहीरन का जाया, बामन को पूत! लुहार ने पाले पोसे। बनिया ने पढ़ाओं लिखाओं। और अंत में ठकुरानी ने अपनो ठाकुर वरे।"[5] आदिवासी महिला का बलात्कार कर उसे कुँआरी माता बनाया जात हैं। जिसकारन अक्कल का सारा जीवन बरबाद हो जाता हैं। पुजारी की वासना अक्कल को तहस-नहस कर देती हैं। कुँवारी माता होने के कारण सारा समुदाय उसको घृणा की दृष्टि से देखता हैं। और उसके बच्चें कों भी दर-दर की ठोकरे खानी पड़ती हैं।

पार उपन्यास में 'बाल विवाह' जैसी समस्या को भी उघाड़ा गया है। बाल विवाह के कारण गोराबाई का जीवन भी बर्बाद हो जाता हैं। गोराबाई का विवाह एक ऐसे लड़के से किया जाता है जो हिजड़ा और नचनियां है। 'गोराबाई' भी समाजिक कुरीतियों का शिकार होती है। निचली व मझली जातियों के औरतों को ग्रामवधू की पदवी दी जाती और उनका शोषण करना, उपभोग करना ऊपरी जाति अपना अधिकार समझती जिससे 'गोराबाई' भी बच नहीं पाती। आदिवासी

महिलाओं का उत्पीड़न, शोषण, और उपभोग जमींदार, अफसर, भांडवलदार और शहर के रईसजादे करते है जो औरतो को खरिदते हैं, और धुरेसाव, जैसे लालची उन्हें बेचते हैं। 'मुनिया' को घुरेसाव कुछ रुपयों के लिए रसूखदारों को बेच देता है।

'पार' उपन्यास में वीरेन्द्र जैन, ने जीरोन खेरे के अदिवसियों की वास्तविकता को उघाडा है। सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, एवं आर्थिक परिवेश में व्याप्त विसंगतियों एवं विकृतियों की सशक्त अभिव्यक्ति की है। विवाह के रीति-रिवाज, लोक-गीत, लोक-संगीत, लोक-परम्पराएँ, आर्थिक-विपनन्ता, अंध-श्रद्धा, ऋण-ग्रस्तता, भूत-प्रेत में विश्वास, पशुओं एवं जंगलो में परमशक्ति का वास, ग्राम देवता, पूजा सम्बन्धी पद्धतियाँ, चुडैल सम्बन्धी विश्वास, आदिवासियों का अज्ञान, अशिक्षा, दीन-हीनता को उघाडा है। ठाकुर, बामन, एवं अमीरों द्वारा आदिवासियों का शोषण, आदिवासी महिलाओं का यौन शोषण, किसानों का शोषण, आदिवासियों की राजकीय एवं प्रशासकीय व्यवस्था द्वारा लूट आदि सभी का वास्तविक रूप उपन्यास में है। 'पार' उपन्यास में प्रमुखता बांध परियोजना से होने वाले विस्थापन की समस्या को गहराई से अभिव्यक्त किया गया है। विकास, परिवर्तन और आदिवासी हितों के नाम पर आदिवासियों को किस प्रकार प्रताड़ित किया जा रहा है इसका जीवंत चित्रण उपन्यास का उद्देश है। मनोहर लाल के अनुसार–"समाज, शासन, धर्म, संस्कृति, व्यवस्था के दोहरे आचरण को उजागर करना, विरोधाभासों को उघाड़ना, आतंक और आंतकियों की पहचान करवाना, शोषितों और भरमाए गये लोंगों, समूहों के भयातुर मौन को शब्द देना वीरेन्द्र जैन अपने लेखन का उदेश्य मानते हैं। वीरेन्द्र जैन परिवर्तन और समानता की आकांक्षा पाले हुए हैं। व्यक्तिगत नैतिकता और जोखिम उठाने की हद तक साहस उनका जीवन धार है।" आदिवासियों को न्याय देने हेतु विकास के नाम पर होने वाले उनके शोषण, लूट-खसोट, अवमानना, राजकीय विसंगती एवं विकृतियों को निर्भीकता से उपन्यास में उघाड़ा है।

सन्दर्भ

1. पार, वीरेन्द्र जैन, पृ. 126 -127
2. पार, वीरेन्द्र जैन, पृ. 15
3. पार, वीरेन्द्र जैन, पृ. 197
4. हिन्दी में आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन, प्रो. बी.के. कलासवा, पृ. 200
5. पार, वीरेन्द्र जैन, पृ. 118